स्वतंत्रता के बाद भारतीय किसान आंदोलनः विकास क्रम, बदलता स्वरूप और समकालीन परिप्रेक्ष्य

अनुपम गौतम
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, किशोरी रमण गर्ल्स पीजी कॉलेज, मथुरा, उत्तर प्रदेश

सारांशः-

स्वतंत्रता के बाद भारतीय किसान आंदोलनों का स्वरूप, मुद्दे, नेतृत्व तथा संघर्ष के तरीके समय के साथ निरंतर परिवर्तित हुए हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य स्वतंत्रता के बाद भारतीय किसान आंदोलनों के विकासक्रम, बदलते स्वरूप, प्रमुख मुद्दों, नेतृत्व एवं संगठनात्मक विकास, प्रभाव तथा समकालीन चुनौतियों का विश्लेषण करना है। अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है, जिनमें प्रमुख पुस्तकों, शोध लेखों तथा अन्य प्रकाशित सामग्री का अध्ययन शामिल है। प्राप्त सामग्री का विषय के आधार पर विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के बाद किसान आंदोलनों का स्वरूप निरंतर बदलता रहा। प्रारम्भिक दौर में भूमि सुधार, बंटाईदारी और किसानों के अधिकार प्रमुख मुद्दे थे, जबकि बाद के समय में कृषि मूल्य, न्यूनतम समर्थन मूल्य, कृषिऋण, सब्सिडी, भूमि अधिग्रहण, उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा कृषि कानून जैसे प्रश्न किसान आंदोलनों के केंद्र में आए। इसी के साथ नेतृत्व, संगठन और आंदोलन की रणनीतियों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले। इन आंदोलनों ने किसानों के हितों को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने, सरकार को कृषि नीतियों पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित करने तथा लोकतांत्रिक भागीदारी को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि वर्तमान समय में कृषि संकट, छोटे एवं सीमांत किसानों की समस्याएँ, जलवायु परिवर्तन तथा बदलती कृषि नीतियाँ किसान आंदोलनों के सामने नई चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रही हैं। इसलिए बदलती परिस्थितियों के अनुरूप किसान आंदोलनों की भूमिका और उनकी प्रासंगिकता भविष्य में भी बनी रहने की संभावना है।

मुख्य बिन्दुः- भारतीय किसान आंदोलन, स्वतंत्रता के बाद भारत, विकासक्रम, बदलता स्वरूप, किसान नेतृत्व, किसान संगठन, कृषि नीति, न्यूनतम समर्थन मूल्य , कृषि संकट, समकालीन चुनौतियाँ।

परिचयः-

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ कृषि केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि करोड़ों लोगों **की** आजीविका, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक जीवन का आधार रही है। भारतीय किसान आंदोलनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि औपनिवेशिक काल में निहित है, जब किसानों ने जमींदारी व्यवस्था, अन्यायपूर्ण भूमि-राजस्व नीतियों तथा आर्थिक शोषण के विरुद्ध संगठित संघर्ष किए। इन आंदोलनों ने ग्रामीण समाज में राजनीतिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और स्वतंत्रता आंदोलन को भी व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह अपेक्षा की गई थी कि भूमि सुधार, जमींदारी उन्मूलन तथा कृषि विकास संबंधी नीतियों के माध्यम से किसानों की समस्याओं का समाधान होगा। यद्यपि इन प्रयासों से कृषि क्षेत्र में कुछ सकारात्मक परिवर्तन हुए, फिर भी भूमि सुधारों का असमान क्रियान्वयन, ग्रामीण विषमताएँ तथा संसाधनों के असमान वितरण के कारण किसान असंतोष पूरी तरह समाप्त नहीं हो सका। इसके बाद हरित क्रांति ने कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की, किन्तु इसके लाभ सभी क्षेत्रों और सभी वर्गों के किसानों तक समान रूप से नहीं

पहुँचे। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असमानता, उत्पादन लागत, सिंचाई, कृषि निवेश तथा आय से संबंधित नई समस्याएँ उभरकर सामने आईं।

1991 के बाद उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा कृषि के बढ़ते बाज़ारीकरण ने भारतीय कृषि व्यवस्था को एक नए दौर में प्रवेश कराया। इस परिवर्तन ने किसानों के सामने न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), ऋणग्रस्तता, बढ़ती उत्पादन लागत, बाज़ार की अनिश्चितता, कॉर्पोरेट हस्तक्षेप तथा कृषि आय जैसे अनेक नए प्रश्न खड़े किए। इन परिस्थितियों में किसान आंदोलनों का स्वरूप भी बदलता गया। जहाँ प्रारम्भिक आंदोलनों का केंद्र भूमि सुधार और कृषक अधिकार थे, वहीं बाद के आंदोलनों में कृषि मूल्य, बाज़ार, वैश्वीकरण, कृषि नीतियाँ तथा किसान अधिकार प्रमुख मुद्दे बन गए। विशेष रूप से 2020-21 के किसान आंदोलन ने कृषि कानूनों, संघीय ढाँचे, लोकतांत्रिक संवाद तथा नीति-निर्माण में किसानों की भागीदारी जैसे प्रश्नों को राष्ट्रीय बहस का विषय बनाया। इन परिवर्तनों से स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के बाद किसान आंदोलन केवल आर्थिक हितों की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रहे, बल्कि वे सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक अधिकारों, ग्रामीण विकास तथा कृषि नीति से जुड़े व्यापक प्रश्नों का भी महत्वपूर्ण माध्यम बने। इन्हीं परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन स्वतंत्रता के बाद भारतीय किसान आंदोलनों के विकासक्रम, बदलते स्वरूप, प्रमुख मुद्दों, नेतृत्व एवं संगठनात्मक विकास, प्रभाव, उपलब्धियों, सीमाओं तथा समकालीन चुनौतियों का उपलब्ध साहित्य के आधार पर विश्लेषण करता है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक एवं समीक्षा-आधारित शोध है। इस अध्ययन में स्वतंत्र भारत के किसान आंदोलनों के विकास, चुनौतियों तथा समकालीन परिप्रेक्ष्य के अध्ययन के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। अध्ययन का आधार प्रमुख पुस्तकों, शोध-पत्रों, संपादित ग्रंथों तथा किसानों की स्थिति और कृषि क्षेत्र से संबंधित विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों पर आधारित है। उपलब्ध साहित्य का वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए विभिन्न विद्वानों के विचारों का समेकित मूल्यांकन किया गया है। इसके आधार पर प्राप्त निष्कर्षों को विषयवार प्रस्तुत किया गया है, जिससे स्वतंत्र भारत में किसान आंदोलनों के विकासक्रम, बदलते स्वरूप, प्रमुख मुद्दों, नेतृत्व, संगठनात्मक संरचना, उपलब्धियों तथा समकालीन चुनौतियों को समग्र रूप से समझने का प्रयास किया गया है।

साहित्य समीक्षा

भारतीय किसान आंदोलनों पर समय-समय पर अनेक विद्वानों ने अलग-अलग दृष्टिकोणों से अध्ययन किया है। इन अध्ययनों में किसान आंदोलनों के ऐतिहासिक विकास, उनके सामाजिक और आर्थिक आधार, नेतृत्व, संगठन, वर्गीय स्वरूप तथा बदलते मुद्दों पर विस्तार से चर्चा मिलती है। कुछ विद्वानों ने किसान आंदोलनों को ग्रामीण समाज में हो रहे सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के संदर्भ में समझने का प्रयास किया है, जबकि कुछ ने उन्हें राज्य की कृषि नीतियों, वैश्वीकरण और बाजार व्यवस्था से जोड़कर देखा है। हाल के अध्ययनों में 2020-21 के किसान आंदोलन ने भी शोधकर्ताओं का विशेष ध्यान आकर्षित किया है। उपलब्ध साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय किसान आंदोलनों का स्वरूप समय के साथ बदलता रहा है। इसी कारण इस अध्ययन में प्रमुख विद्वानों के विचारों का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इस विषय पर प्रारम्भिक अध्ययनों में सुनील सेन (1982) का कार्य महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने भारतीय किसान आंदोलनों का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए यह दिखाया है कि स्वतंत्रता के बाद विभिन्न राज्यों में किसान आंदोलनों का विकास स्थानीय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार हुआ। उनके

अध्ययन में तेलंगाना, पेप्सू, नक्सलबाड़ी तथा अन्य प्रमुख किसान आंदोलनों की पृष्ठभूमि, उनके कारण और विकासक्रम का व्यवस्थित विवरण मिलता है। वे मानते हैं कि किसान आंदोलन केवल आर्थिक असंतोष की अभिव्यक्ति नहीं थे, बल्कि भूमि संबंधों, कृषि संरचना और ग्रामीण सत्ता-संतुलन में परिवर्तन की मांग से भी जुड़े थे। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि हरित क्रांति के बाद कृषि क्षेत्र में आए परिवर्तनों ने किसान आंदोलनों के मुद्दों और स्वरूप दोनों को प्रभावित किया। इस प्रकार उनका अध्ययन स्वतंत्रता के बाद भारतीय किसान आंदोलनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने का आधार प्रदान करता है।

इसके बाद गेल ऑम्वेट (1993) ने किसान आंदोलनों को नए सामाजिक आंदोलनों के संदर्भ में समझने का प्रयास किया। उनके अनुसार 1980 के दशक के किसान आंदोलन पहले के किसान संघर्षों से कई मायनों में अलग थे। इन आंदोलनों का मुख्य उद्देश्य भूमि संबंधों में परिवर्तन से अधिक कृषि मूल्यों, सरकारी नीतियों, बाजार व्यवस्था तथा किसानों के आर्थिक हितों की रक्षा करना था। वे बताती हैं कि इस दौर में किसान संगठनों का विस्तार हुआ और उन्होंने लोकतांत्रिक तरीकों से अपनी मांगों को सरकार के सामने रखा। उनके अध्ययन में यह भी संकेत मिलता है कि नए किसान आंदोलन ग्रामीण समाज में बदलती आर्थिक परिस्थितियों और किसानों की नई आकांक्षाओं का परिणाम थे।

इसी क्रम में किशन पटनायक (2006) किसान प्रश्न को व्यापक आर्थिक और राजनीतिक संदर्भ में देखते हैं। उनके अनुसार भारतीय कृषि का संकट केवल उत्पादन का संकट नहीं है, बल्कि यह विकास नीतियों, कृषि की उपेक्षा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बढ़ती असमानताओं से जुड़ा हुआ है। वे मानते हैं कि किसान आंदोलनों को केवल मांगों तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उन्हें कृषि नीति, ग्रामीण विकास और किसानों के सम्मानजनक जीवन से जुड़े व्यापक प्रश्नों को भी उठाना चाहिए। उनके अध्ययन में किसान आंदोलन को सामाजिक परिवर्तन के माध्यम के रूप में देखा गया है तथा किसानों की एकता और दीर्घकालीन संगठन की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया है।

गेल ऑम्वेट और किशन पटनायक के बाद किसान आंदोलनों की प्रकृति पर टॉम ब्रास (1995) ने एक अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। वे नए किसान आंदोलनों की अवधारणा की आलोचनात्मक समीक्षा करते हैं। उनके अनुसार इन आंदोलनों को केवल "नया" कह देना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इनके भीतर वर्गीय हितों और सामाजिक संरचना के अनेक अंतर्विरोध मौजूद हैं। उनका तर्क है कि अधिकांश नए किसान आंदोलन मुख्यतः मध्यम और समृद्ध किसानों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि भूमिहीन किसानों और कृषि मजदूरों की समस्याएँ अपेक्षाकृत कम दिखाई देती हैं। इसलिए किसान आंदोलनों का अध्ययन करते समय उनके वर्गीय आधार, नेतृत्व और सामाजिक संरचना को साथ-साथ देखना आवश्यक है। इस दृष्टि से उनका अध्ययन किसान आंदोलनों के आलोचनात्मक मूल्यांकन का महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

इसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए घनश्याम शाह (2004) भारतीय किसान आंदोलनों को व्यापक सामाजिक आंदोलनों के संदर्भ में समझते हैं। उनके अनुसार किसान आंदोलन समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहे हैं, इसलिए उन्हें किसी एक दृष्टिकोण से नहीं समझा जा सकता। वे किसान आंदोलनों के विकासक्रम, नेतृत्व, संगठन, सामाजिक आधार तथा प्रमुख मुद्दों का क्रमबद्ध विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। उनके अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रारम्भिक किसान आंदोलनों का केंद्र भूमि संबंधी प्रश्न थे, जबकि बाद के आंदोलनों में कृषि मूल्य, ऋण, सिंचाई, बिजली, सब्सिडी तथा सरकारी नीतियाँ प्रमुख मुद्दे बन गईं। साथ ही वे यह भी बताते हैं कि किसान आंदोलनों का स्वरूप स्थानीय संघर्षों से आगे बढ़कर क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर तक विकसित हुआ। इस प्रकार उनका अध्ययन भारतीय किसान आंदोलनों की बदलती प्रकृति को समझने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

अमित भादुड़ी (2022) का अध्ययन 2020-21 के किसान आंदोलन को भारतीय कृषि संकट और आर्थिक नीतियों के व्यापक संदर्भ में देखता है। उनके अनुसार यह आंदोलन केवल तीन कृषि कानूनों के विरोध तक सीमित नहीं था, बल्कि यह किसानों की आजीविका, कृषि बाज़ार, न्यूनतम समर्थन मूल्य तथा राज्य की कृषि नीति से जुड़ी गहरी चिंताओं की अभिव्यक्ति था। वे मानते हैं कि कृषि क्षेत्र में बढ़ते बाज़ारीकरण और कॉर्पोरेट प्रभाव के कारण किसानों में असुरक्षा की भावना बढ़ी, जिसके परिणामस्वरूप व्यापक स्तर पर किसान संगठित हुए। उनका अध्ययन यह भी बताता है कि किसान आंदोलन को केवल आर्थिक दृष्टि से नहीं, बल्कि सामाजिक और लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रश्न के रूप में भी समझा जाना चाहिए। इस प्रकार अमित भादुड़ी का अध्ययन समकालीन किसान आंदोलनों के आर्थिक और नीतिगत पक्ष को समझने में महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

इसके बाद मनदीप पुनिया (2022) ने 2020-21 के किसान आंदोलन का प्रत्यक्ष अनुभव और जमीनी दस्तावेज प्रस्तुत किया है। उनके अध्ययन में आंदोलन के दौरान किसानों के जीवन, उनके संघर्ष, संगठन, अनुशासन और आपसी सहयोग का विस्तृत चित्र मिलता है। वे बताते हैं कि यह आंदोलन केवल विभिन्न किसान संगठनों का साझा प्रयास नहीं था, बल्कि इसमें महिलाओं, युवाओं, सामाजिक संगठनों और आम नागरिकों की भी सक्रिय भागीदारी रही। आंदोलन के दौरान लंगर, पुस्तकालय, चिकित्सा शिविर तथा सामुदायिक सहयोग जैसी व्यवस्थाओं ने इसकी सामाजिक शक्ति को और मजबूत किया। उनके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि समकालीन किसान आंदोलन केवल विरोध का माध्यम नहीं रहे, बल्कि उन्होंने लोकतांत्रिक भागीदारी, सामाजिक एकजुटता और शांतिपूर्ण जनसंघर्ष का भी प्रभावी उदाहरण प्रस्तुत किया।

उपलब्ध अध्ययनों से पता चलता है कि सभी विद्वानों ने किसान आंदोलनों के महत्व को स्वीकार किया है, लेकिन उन्हें अलग-अलग दृष्टिकोण से समझाया है। सुनील सेन ने किसान आंदोलनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वर्गीय पक्ष पर बल दिया है। घनश्याम शाह ने उन्हें सामाजिक आंदोलनों के संदर्भ में देखा है। गेल ऑम्वेट ने किसान आंदोलनों को नए सामाजिक आंदोलनों के रूप में समझाया है, जबकि टॉम ब्रास ने उनके वर्गीय स्वरूप और नेतृत्व से जुड़े पक्षों पर चर्चा की है। दूसरी ओर, किशन पटनायक ने कृषि संकट और विकास की नीतियों को किसान आंदोलनों की प्रमुख पृष्ठभूमि माना है। इन अध्ययनों से यह समझ में आता है कि किसान आंदोलनों को केवल एक दृष्टिकोण से नहीं समझा जा सकता। इनके ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सभी पक्षों को साथ लेकर देखने से उनका व्यापक स्वरूप सामने आता है।

अध्ययन के परिणाम –

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों को विषयवार व्यवस्थित किया गया है। इन निष्कर्षों के आधार पर स्वतंत्र भारत में किसान आंदोलनों के विकासक्रम, प्रमुख मुद्दों, नेतृत्व एवं संगठनात्मक स्वरूप, उपलब्धियों तथा समकालीन चुनौतियों का विश्लेषण निम्नलिखित विषयों के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है।

1. स्वतंत्र भारत में किसान आंदोलनों का विकासक्रम

भारतीय किसान आंदोलनों की पृष्ठभूमि औपनिवेशिक काल के भूमि शोषण, जमींदारी व्यवस्था और कृषकों के आर्थिक उत्पीड़न से जुड़ी रही। स्वतंत्रता के समय तेभागा (1946-47) और तेलंगाना आंदोलन (1946-51) जैसे संघर्षों ने भूमि अधिकार, बटाईदारों के अधिकार तथा सामंती शोषण के विरुद्ध व्यापक जनसंघर्ष की नींव रखी। स्वतंत्रता के बादपेप्सू काश्तकार (मुजारा) आंदोलन, भूमि हड़प आंदोलन तथा विभिन्न भूमि सुधार आंदोलनों ने भूमिहीनों, काश्तकारों और छोटे किसानों के भूमि अधिकार तथा भूमि सुधारों के प्रभावी क्रियान्वयन की माँग को आगे बढ़ाया। इसी क्रम में नक्सलबाड़ी आंदोलन (1967) ने भूमि असमानता और वर्गीय शोषण के प्रश्न को उग्र

रूप में राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाया। 1960 के दशक के उत्तरार्ध में हरित क्रांति ने कृषि उत्पादन बढ़ाया, किंतु क्षेत्रीय और सामाजिक असमानताओं को भी बढ़ाया। परिणामस्वरूप 1980 के दशक में भारतीय किसान यूनियन, शेतकारी संगठन, कर्नाटक राज्य रैयत संघ जैसे नए किसान आंदोलन उभरे, जिनका केंद्र भूमि सुधार नहींबल्कि लाभकारी मूल्य बिजली, सिंचाई, ऋण, कर व्यवस्था तथा कृषि नीति जैसे मुद्दे बन गए। 1991 के बाद उदारीकरण, वैश्वीकरण और विश्व व्यापार संगठन नीतियों ने किसान आंदोलनों को नया आयाम दिया। अब आंदोलन भूमि अधिग्रहण, कॉर्पोरेट कृषि,

जी एम, बीज, पेटेंट, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और कृषि बाज़ार के प्रश्नों से भी जुड़ने लगे। सिंगूर, नंदीग्राम, भट्टा-पारसौल, जनादेश और जन सत्याग्रह जैसे आंदोलनों ने भूमि अधिकार एवं विकास परियोजनाओं के सामाजिक प्रभाव को राष्ट्रीय बहस का विषय बनाया।

इस विकासक्रम का नवीनतम चरण 2020-21 का किसान आंदोलन है, जिसमें तीन कृषि कानूनों के विरोध,न्यूनतम समर्थन मूल्यकी कानूनी गारंटी तथा कृषि बाज़ार में राज्य की भूमिका जैसे प्रश्न राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में आ गए। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारतीय किसान आंदोलन समय के साथ भूमि सुधार और सामंती शोषण के विरुद्ध संघर्ष से आगे बढ़कर कृषि नीति, बाज़ार, वैश्वीकरण, कॉर्पोरेट नियंत्रण और किसान अधिकारों के व्यापक लोकतांत्रिक आंदोलन के रूप में विकसित हुए हैं।

2. किसान आंदोलनों का बदलता स्वरूप एवं प्रमुख मुद्दे

भारतीय किसान आंदोलनों का स्वरूप समय के साथ निरंतर बदलता रहा है। स्वतंत्रता के बाद के प्रारम्भिक किसान आंदोलन मुख्यतः भूमि सुधार, जमींदारी उन्मूलन, बंटाईदारों के अधिकार, बेदखली के विरोध तथा भूमिहीन किसानों और कृषि मजदूरों के अधिकारों पर केंद्रित थे। अनेक आंदोलन वर्ग-आधारित तथा कुछ स्थानों पर सशस्त्र प्रकृति के भी थे, जिनका उद्देश्य ग्रामीण सत्ता संरचना को चुनौती देना और भूमि संबंधों में परिवर्तन लाना था।

हरित क्रांति के बाद 1980 के दशक में तथाकथित "नए किसान आंदोलनों का उदय हुआ। इन आंदोलनों का नेतृत्व मुख्यतः मध्यम एवं समृद्ध किसानों के हाथों में रहा तथा इनका स्वरूप सशस्त्र संघर्ष के स्थान पर शांतिपूर्ण, संगठित और दबाव समूह आधारित हो गया। भारतीय किसान यूनियन, शेतकारी संगठन, कर्नाटक राज्य रैयत संघ और गुजरात किसान संघ जैसे संगठनों ने लाभकारी मूल्य , कृषि उत्पादों के उचित मूल्य, बिजली, सिंचाई, उर्वरक, ऋण तथा सरकारी नियंत्रण में कमी जैसे आर्थिक मुद्दों को प्रमुखता दी। टॉम ब्रास जैसे विद्वानों ने इन आंदोलनों की आलोचना करते हुए कहा कि इनका नेतृत्व मुख्यतः संपन्न किसानों के हाथों में था और इनमें वर्गीय असमानताओं की अपेक्षा व्यापक किसान पहचान पर अधिक बल दिया गया।

1990 के बाद उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के दौर में किसान आंदोलनों के स्वरूप और मुद्दों दोनों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। आंदोलन केवल कृषि मूल्य और लागत तक सीमित नहीं रहे, बल्कि विश्व व्यापार संगठन, कॉर्पोरेट खेती, जी एम बीज, पेटेंट, सेज , भूमि अधिग्रहण, प्राकृतिक संसाधनों के निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नीतियों के विरोध जैसे व्यापक प्रश्नों को भी अपने एजेंडे में शामिल करने लगे। इस दौर में किसान संगठनों ने क्षेत्रीय से राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय से अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क विकसित किए और विभिन्न सामाजिक संगठनों के साथ मिलकर अभियान चलाए। इक्कीसवीं सदी, विशेषकर 2020-21 के किसान आंदोलन, ने किसान आंदोलनों के स्वरूप को एक नए चरण में पहुँचा दिया। ये आंदोलन क्षेत्रीय सीमाओं से निकलकर अखिल भारतीय, लोकतांत्रिक और दीर्घकालीन जनआंदोलन बने। दिल्ली की सीमाओं पर धरना, संयुक्त किसान मोर्चा

जैसे व्यापक गठबंधन, सोशल मीडिया और जनसंचार माध्यमों का प्रभावी उपयोग, महिलाओं, युवाओं तथा प्रवासी भारतीयों की भागीदारी और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर समर्थन ने इन्हें नई पहचान दी। इस चरण में न्यूनतम समर्थन मूल्य की कानूनी गारंटी, तीन कृषि कानूनों का विरोध, कॉर्पोरेट नियंत्रण का प्रतिरोध तथा किसानों के अधिकार प्रमुख मुद्दे बनकर उभरे।

इस प्रकार भारतीय किसान आंदोलनों का स्वरूप स्थानीय से राष्ट्रीय, क्षेत्रीय से व्यापक नेटवर्क आधारित, सशस्त्र से लोकतांत्रिक, पारंपरिक से मीडिया एवं सोशल मीडिया समर्थित रूप में विकसित हुआ है। इसी के साथ इनके मुद्दे भी भूमि सुधार से आगे बढ़कर कृषि मूल्य, कृषि लागत, वैश्वीकरण, भूमि अधिग्रहण, कॉर्पोरेट नियंत्रण और कृषि नीतियों तक विस्तृत हुए, जिससे किसान आंदोलन भारतीय लोकतंत्र में व्यापक सामाजिक-आर्थिक विमर्श का महत्वपूर्ण माध्यम बन गए।

3. भारतीय किसान आंदोलनों में नेतृत्व एवं संगठनात्मक विकास

स्वतंत्रता के बाद भारतीय किसान आंदोलनों में नेतृत्व और संगठनात्मक स्वरूप समय के साथ निरंतर परिवर्तित हुआ। प्रारम्भिक दशकों में किसान आंदोलनों का नेतृत्व वैचारिक, वर्ग-संघर्ष आधारित तथा क्षेत्रीय स्तर पर संगठित था। भूमि सुधार, भूमिहीन किसानों के अधिकार और सामंती शोषण के विरुद्ध हुए संघर्षों में स्थानीय कैडर तथा वामपंथी नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका रही। नक्सलबाड़ी जैसे आंदोलनों में चारु मजूमदार जैसे नेताओं ने वर्ग-संघर्ष पर आधारित नेतृत्व और गाँव-स्तर के संगठन के माध्यम से किसानों को संगठित करने का प्रयास किया। इस दौर में संगठन अपेक्षाकृत सीमित, अनुशासित और वैचारिक प्रतिबद्धता पर आधारित थे।

1970 और 1980 के दशक में किसान आंदोलनों का नेतृत्व नए स्वरूप में उभरता है। चौधरी चरण सिंह ने छोटे और मध्यम किसानों के हितों को राष्ट्रीय राजनीति से जोड़ते हुए किसान चेतना को वैचारिक आधार प्रदान किया। वहीं महेंद्र सिंह टिकैत ने भारतीय किसान यूनियन के माध्यम से महापंचायतों, पंचायतों, सामूहिक बैठकों और सरकार से प्रत्यक्ष संवाद को आंदोलन की प्रमुख रणनीति बनाया। दूसरी ओर शरद जोशी ने शेतकारी संगठन के माध्यम से किसानों को आर्थिक मुद्दों-विशेषकर लाभकारी मूल्य और कृषि बाज़ार-पर संगठित किया। इसी क्रम में एम. डी. नंजुंडास्वामी ने कर्नाटक राज्य रैयत संघ के माध्यम से वैश्वीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों, बीज पेटेंट तथा कृषि पर कॉरपोरेट नियंत्रण के विरुद्ध किसानों को संगठित किया। इस दौर में नेतृत्व केवल करिश्माई व्यक्तित्व तक सीमित नहीं रहा, बल्कि किसान यूनियनों और दबाव-समूहों के माध्यम से संस्थागत रूप लेने लगा।

1990 के बाद उदारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में किसान संगठनों का स्वरूप और व्यापक हुआ। विभिन्न राज्यों के किसान संगठनों के बीच समन्वय बढ़ा तथा संगठन जाति, क्षेत्र और विचारधारा की सीमाओं से आगे बढ़कर साझा आर्थिक मुद्दों पर एकजुट होने लगे। किसानों को संगठित करने के लिए सभाओं, यात्राओं, महापंचायतों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा मीडिया का उपयोग बढ़ा, जिसने आंदोलन की पहुँच को स्थानीय स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक विस्तृत किया।

2020-21 के किसान आंदोलन में नेतृत्व और संगठन का सबसे विकसित स्वरूप दिखाई देता है। यह आंदोलन किसी एक नेता पर आधारित न होकर अनेक किसान संगठनों के सामूहिक नेतृत्व में संचालित हुआ। राकेश टिकैत सहित विभिन्न क्षेत्रीय नेताओं ने अपने-अपने क्षेत्रों में किसानों को संगठित किया, जबकि संयुक्त किसान मोर्चा ने साझा मंच के रूप में समन्वय स्थापित किया। महापंचायतों, स्वयंसेवी नेटवर्क, सोशल मीडिया, डिजिटल संचार और विभिन्न सामाजिक समूहों की भागीदारी ने किसान लामबंदी को अभूतपूर्व विस्तार दिया। इस प्रकार भारतीय किसान आंदोलनों का नेतृत्व व्यक्तित्व-आधारित मॉडल से सामूहिक नेतृत्व की ओर तथा संगठन स्थानीय

इकाइयों से राष्ट्रीय नेटवर्क आधारित संरचना की ओर विकसित हुआ।

4. भारतीय किसान आंदोलनों का प्रभाव, उपलब्धियाँ एवं सीमाएँ

स्वतंत्रता के बाद भारतीय किसान आंदोलनों ने भारतीय कृषि नीति, राजनीति और समाज तीनों को प्रभावित किया। प्रारम्भिक आंदोलनों ने भूमि सुधार, बंटाईदारों के अधिकार और ग्रामीण शोषण जैसे प्रश्नों पर सरकार का ध्यान आकर्षित किया, जिसके परिणामस्वरूप कई राज्यों में भूमि सुधार संबंधी कानून बने। हरित क्रांति के बाद किसान आंदोलनों के दबाव से न्यूनतम समर्थन मूल्य , कृषि मूल्य, सिंचाई, बिजली, उर्वरक, कृषि ऋण, सब्सिडी तथा गन्ना मूल्य जैसी नीतियों में समय-समय पर संशोधन और सुधार किए गए। कई राज्यों में ऋणमाफी, मुआवज़ा तथा भूमि अधिकारों से जुड़े निर्णय भी आंदोलनों के प्रभाव से लिए गए। 2020-21 के किसान आंदोलन ने तीन कृषि कानूनों की वापसी कराकर लोकतांत्रिक जनदबाव की प्रभावशीलता को प्रमाणित किया।

राजनीतिक स्तर पर किसान संगठन प्रभावी दबाव समूह के रूप में उभरे और सरकारों को नियमित संवाद, वार्ता तथा समझौते के लिए बाध्य किया। अनेक राज्यों में किसान राजनीति और क्षेत्रीय दलों के विकास पर भी इन आंदोलनों का प्रभाव पड़ा। सामाजिक स्तर पर किसान आंदोलनों ने किसान चेतना, सामूहिक पहचान और लोकतांत्रिक भागीदारी को मजबूत किया। महाराष्ट्र के 2018 किसान लॉन्ग मार्च तथा 2020-21 के आंदोलन ने ग्रामीण-शहरी एकजुटता, नागरिक समाज के समर्थन तथा शांतिपूर्ण जनसंगठन की शक्ति को भी स्थापित किया। इन आंदोलनों ने किसानों की सामूहिक सौदेबाज़ी क्षमता को सुदृढ़ किया और कृषि प्रश्नों को राष्ट्रीय नीति-निर्माण में स्थायी स्थान दिलाया।

इसके बावजूद इन आंदोलनों की कुछ सीमाएँ और चुनौतियाँ भी रहीं। अनेक अध्ययनों के अनुसार भूमिहीन कृषि मजदूरों, छोटे किसानों, दलितों और आदिवासी किसानों के प्रश्नों को समान महत्व नहीं मिल पाया। विभिन्न किसान संगठनों के बीच वैचारिक एवं क्षेत्रीय मतभेद बने रहे, जिससे स्थायी एकता विकसित नहीं हो सकी। कई अवसरों पर राजनीतिक दलों के बढ़ते हस्तक्षेप ने आंदोलनों की स्वायत्तता पर भी प्रश्न खड़े किए। विशेषकर 2020-21 के किसान आंदोलन के दौरान आंदोलन में बाहरी राजनीतिक तथा वैचारिक तत्वों के हस्तक्षेप और अलगाववादी समूहों द्वारा आंदोलन का लाभउठाने के आरोप भी सामने आए, जिससे आंदोलन की छवि और राष्ट्रवादी वैधता पर सार्वजनिक बहस हुई। यद्यपि इन आरोपों पर विभिन्न मत रहे, फिर भी इसने बड़े किसान आंदोलनों के सामने उनकी एकता, वैचारिक स्पष्टता और स्वायत्तता बनाए रखने की चुनौती को रेखांकित किया। इसलिए भारतीय किसान आंदोलनों का मूल्यांकन उनकी उपलब्धियों के साथ-साथ इन सीमाओं और चुनौतियों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

5. समकालीन चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएँ

इक्कीसवीं सदी में भारतीय किसान आंदोलन नई परिस्थितियों और चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। कृषि की बढ़ती लागत, किसानों की घटती आय, ऋणग्रस्तता, जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक आपदाएँ तथा छोटे और सीमांत किसानों की बढ़ती संख्या ने कृषि संकट को और गहरा किया है। इसके साथ ही न्यूनतम समर्थन मूल्य की कानूनी गारंटी, कॉर्पोरेट कृषि, अनुबंध खेती, भूमि अधिग्रहण तथा वैश्विक कृषि बाज़ार से जुड़ी नीतियाँ आज भी किसान आंदोलनों के प्रमुख मुद्दे बने हुए हैं। इन परिस्थितियों में किसान संगठनों के सामने सबसे बड़ी चुनौती विविध किसान वर्गों-छोटे, सीमांत, भूमिहीन, महिला तथा युवा किसानों-को एक साझा मंच पर संगठित करना है। साथ ही क्षेत्रीय हितों, वैचारिक मतभेदों और राजनीतिक हस्तक्षेप से ऊपर उठकर दीर्घकालीन संगठनात्मक एकता बनाए रखना भीआवश्यक है। भविष्य के किसान आंदोलनों को केवल विरोध की राजनीति तक सीमित न रहकर

कृषि सुधार, सतत कृषि, जल संरक्षण, तकनीकी नवाचार तथा किसानों की आय सुरक्षा जैसे रचनात्मक प्रश्नों पर भी ध्यान देना होगा।

इस प्रकार भारतीय किसान आंदोलनों ने समय के साथ स्वयं को बदलती परिस्थितियों के अनुरूप ढाला है। भविष्य में उनकी प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वे बदलती कृषि अर्थव्यवस्था, पर्यावरणीय चुनौतियों और नीति-निर्माण की प्रक्रियाओं के साथ किस प्रकार संवाद स्थापित करते हुए किसानों के व्यापक हितों का प्रतिनिधित्व कर पाते हैं।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता के बाद भारतीय किसान आंदोलनों का अध्ययन यह दर्शाता है कि ये आंदोलन समय के साथ बदलती सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप निरंतर विकसित हुए हैं। प्रारम्भिक दौर में जहाँ भूमि सुधार, बंटाईदारी और ग्रामीण शोषण जैसे प्रश्न प्रमुख थे, वहीं बाद के वर्षों में कृषि मूल्य, न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), ऋण, सब्सिडी, भूमि अधिग्रहण, उदारीकरण तथा कृषि कानून जैसे मुद्दे केंद्र में आए। इससे स्पष्ट होता है कि किसान आंदोलनों का स्वरूप स्थिर नहीं रहा, बल्कि परिस्थितियों के अनुसार उनके मुद्दों, नेतृत्व, संगठन और संघर्ष की रणनीतियों में निरंतर परिवर्तन होता रहा।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि किसान आंदोलनों ने केवल किसानों की समस्याओं को सामने रखने का कार्य नहीं किया, बल्कि अनेक अवसरों पर सरकार को कृषि संबंधी नीतियों पर पुनर्विचार करने, किसानों के साथ संवाद स्थापित करने तथा आवश्यक नीतिगत निर्णय लेने के लिए भी प्रेरित किया। इन आंदोलनों ने किसानों में संगठन, सामूहिक चेतना और लोकतांत्रिक भागीदारी को मजबूत किया तथा उन्हें एक प्रभावी दबाव समूह के रूप में स्थापित किया। विशेष रूप से 2020-21 का किसान आंदोलन यह दिखाता है कि लोकतांत्रिक और शांतिपूर्ण जनसंघर्ष आज भी सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। साथ ही यह अध्ययन यह भी संकेत देता है कि भारतीय किसान आंदोलनों के सामने कई चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। छोटे एवं सीमांत किसानों की समस्याएँ, कृषि संकट, जलवायु परिवर्तन, बढ़ती उत्पादन लागत, क्षेत्रीय एवं वैचारिक विविधताएँ तथा संगठनात्मक एकता बनाए रखना भविष्य में भी महत्वपूर्ण प्रश्न बने रहेंगे। इन परिस्थितियों में किसान आंदोलनों की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वे बदलती चुनौतियों के अनुरूप स्वयं को कितना संगठित कर पाते हैं और किसानों के व्यापक हितों का किस प्रकार प्रतिनिधित्व करते हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि भारतीय किसान आंदोलन केवल किसानों के अधिकारों की आवाज़ नहीं रहे हैं, बल्कि उन्होंने भारतीय लोकतंत्र में जनभागीदारी को सशक्त बनाया, कृषि संबंधी प्रश्नों को नीति-निर्माण के केंद्र में बनाए रखा तथा सरकार और किसानों के बीच संवाद की प्रक्रिया को निरंतर जीवित रखा। यही उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है और यही वर्तमान समय में उनकी सबसे महत्वपूर्ण प्रासंगिकता भी है।

संदर्भ सूची

अमित भादुड़ी. (2022). किसान आंदोलनः बदलाव की राजनीति का उभरता चेहरा. नई दिल्ली: आकार बुक्स।

Brass, T. (Ed.).(1995). New Farmers' Movements in India. London: Frank Cass.

चंद्र, बिपिन, मुखर्जी, मृदुला, एवं मुखर्जी, आदित्य. (2008). आज़ादी के बाद का भारत. दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

चौधरी, चरण सिंह. (2002). उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार और कुलक वर्ग. नई दिल्लीः किसान ट्रस्ट।

देशपांडे, तन्वी. (2017, मार्च). भारत में कृषि की स्थिति. नई दिल्ली: पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च।

दीपक कुमार. (2015). कृषि संकट तथा भारतीय किसानों पर इसका प्रभाव. अभय प्रसाद सिंह (सं.), समकालीन भारत में विकास की प्रक्रिया और सामाजिक आंदोलन (पृ. 152-171). नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।

फोरम ऑफ एंटरप्राइजेज फॉर इक्विटेबल डेवलपमेंट (FEED). (2025). सीमांत किसानों की स्थिति रिपोर्ट 2025. नई दिल्लीः फोरम ऑफ एंटरप्राइजेज फॉर इक्विटेबल डेवलपमेंट (FEED).

घनश्याम शाह. (2009). भारत में सामाजिक आंदोलनः संबंधित साहित्य की एक समीक्षा. जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स।

हीरा सिंह. (2015). भारत में भूमि सुधार आंदोलन. अभय प्रसाद सिंह (सं.), समकालीन भारत में विकास की प्रक्रिया और सामाजिक आंदोलन (पृ. 102-118). नई दिल्लीः ओरिएंट ब्लैकस्वान।

किशन पटनायक. (2006). किसान आन्दोलनः दशा और दिशा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।

Lokniti-Centre for the Study of Developing Societies (CSDS). (2014). State of Indian Farmers: A Report. New Delhi: Centre for the Study of Developing Societies (CSDS).

मनदीप पूनिया. (2022). किसान आन्दोलनः ग्राउंड जीरो 2020-2021. नई दिल्लीः सार्थक (राजकमल प्रकाशन समूह)।

Omvedt, G. (1993). Reinventing Revolution: New Social Movements and the Socialist Tradition in India. New York: M. E. Sharpe.

पाण्डेय, अनिरुद्ध. (1986). धरतीपुत्र चौधरी चरण सिंह. नोएडा: ग्रंथ प्रकाशन।

Shah, A., & Sandwell, K. (2023, May). Lessons from the Indian Farmers' Movement: Emerging Solidarities in the KisanAndolan (Issue Brief). Amsterdam: Transnational Institute.

सुनील सेन. (1980). भारत में किसान आंदोलन. कोलकाता: के. पी. बागची एंड कम्पनी।